सूत्र के बत्तीस दोषों का संक्षिप्त विवेचन

—प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन

"अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः।।[1]"

अर्थ :– जो अल्पाक्षर हो, असंदिग्ध हो, सारवद् हो, गूढ हो, निर्दोष हो, हेतुमत् हो और तथ्यपूर्ण हो, उसे ही विद्वज्जन सूत्र कहते हैं।

'सूत्र' के उक्त लक्षण से प्रायः हम सभी परिचित हैं। यह लक्षण सूत्र की अद्भुत गंभीरता को प्रकट करता है।

शास्त्रों में ऐसी ही और भी अनेक बातें आती हैं, जिनसे सूत्र की सारग्राहिता, निर्दोषता, गम्भीरता का ज्ञान होता है। जैसे कि— कहा गया है कि सूत्र में एक-एक अक्षर का बहुत महत्त्व होता है, कोई एक अक्षर भी निरर्थक नहीं होता, हर अक्षर के पीछे बहुत अर्थ छुपा रहता है। यदि आधी मात्रा भी कम हो जाए और भाव कम न हो तो सूत्रकार को पुत्रप्राप्ति के समान सुख प्राप्त होता है–

"अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।"

इनसे भी सूत्र की अद्भुत गंभीरता का प्रमाण मिलता है। तथा ऐसा ज्ञात होता है कि सूत्रों का निर्माण ही नहीं, उनका अध्ययन-अध्यापन भी अत्यधिक कुशलता की अपेक्षा रखता है।

शास्त्रों में, सूत्र के उक्त लक्षण में निर्दिष्ट 7 गुणों का पृथक्-पृथक् विस्तृत व्याख्यान भी उपलब्ध होता है। यहाँ हम सूत्र के मात्र एक गुण 'निर्दोष' की संक्षिप्त चर्चा करने का प्रयास कर रहे हैं।

'निर्दोष' का अर्थ है कि सूत्र में कहीं कोई दोष नहीं होता, वह अत्यन्त निर्दोष होता है। 'निर्दोष' विशेषण की व्याख्या करते हुए शास्त्रों में 32 दोषों का उल्लेख प्राप्त होता है। कहा गया है कि सूत्र को 32 दोषों से रहित होना चाहिये। यथा–

"गणधरादिभिर्द्वात्रिंशद्दोषवर्जितानि सूत्राणि कृतानि।"[2]

'वृहत्कल्पसूत्र' में तो इन 32 दोषों का पृथक्-पृथक् रूप से स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। यथा–

"अलियमुवघायजणयं अवत्थगं निरत्थयं छलं दुहिलं।
निस्सारमहियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं।।
कमभिन्नं वयणभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च।
अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च।।
काल-जइ-च्छविदोसो समयविरुद्धं च वयणमित्तं च।
अत्थावत्तीदोसो हवइ य असमासदोसो उ।।
उवमा-रूवगदोसो परप्पवत्ती य संधिदोसो य।
एए उ सुत्तदोसा बत्तीसं हुंति नायव्वा।।"[3]

अर्थ– 1. अलीक, 2. उपघातजनक, 3. अपार्थक, 4. निरर्थक, 5. छल, 6. द्रुहिल, 7. निस्सार, 8. अधिक, 9. ऊन, 10. पुनरुक्त, 11. व्याहत, 12. अयुक्त, 13. क्रमभिन्न, 14. वचनभिन्न, 15. विभक्तिभिन्न, 16. लिंगभिन्न, 17. अनभिहित, 18. अपद, 19. स्वभावहीन, 20. व्यवहित, 21 कालदोष, 22. यतिदोष, 23. छविदोष, 24. समयविरुद्ध, 25. वचनमात्र, 26. अर्थापत्ति, 27. असमासदोष, 28. उपमादोष, 29. रूपकदोष, 30. परप्रवृत्तिदोष, 31. पददोष, 32. सन्धिदोष –ये सूत्र के बत्तीस दोष जानने चाहिये।

प्रस्तुत आलेख में सूत्र के इन्हीं 32 दोषों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है। आशा है वर्तमान के सभी लेखक और वक्ता इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़कर शास्त्रों के कथन में बहुत अधिक सावधान होने की शिक्षा ग्रहण करेंगे कि अहो, मुनिगण जिसप्रकार एक-एक ग्रास भोजन का ग्रहण 32 दोषों (अन्तरायों) को टालकर करते हैं, उसीप्रकार एक-एक वाक्य का उच्चारण भी 32 दोषों को टालकर करते हैं। कितनी अधिक सावधानी अपेक्षित है

जिनवाणी के कथन में! जिनवाणी की आज्ञा का पालन करने के लिए जिनवाणी के प्रत्येक वक्ता को सूत्रों की भाँति बहुत ही संतुलित और सावधानीपूर्ण कथन करना चाहिए, अन्यथा घोर पाप का भागी बनना पड़ता है। दूषित कथन करनेवाला वक्ता दण्ड का भागी कहा गया है। 'वृहत्कल्पसूत्र' के अनुसार तो दूषित कथन करनेवाला वक्ता यदि साधु हो तो भी दंडनीय है, उसकी सर्व दीक्षा ही निरर्थक कही गई है– **'सर्वा दीक्षा निरर्थिका'।**

सूत्र के 32 दोषों का संक्षिप्त विवेचन इसप्रकार है–

1. **अलीक**– अलीक का अर्थ है– मिथ्या, झूठ। यह दो प्रकार का है– अभूतोद्भावन और भूतनिह्नव। जो नहीं है उसे 'है' कहना अभूतोद्भावन है, जैसे– सृष्टिकर्ता ईश्वर है अथवा वटकणिका मात्र जीव है; और जो है उसे 'नहीं' कहना भूतनिह्नव है, जैसे– जीव नहीं है।
2. **उपघातजनक**– जिस कथन से हिंसा के भाव उत्पन्न होते हों, उसमें उपघातजनक दोष समझना चाहिये। जैसे– **"न मांसभक्षणे दोषः[4]....."** (**अर्थ**– मांसभक्षण में दोष नहीं है.....) इत्यादि।
3. **अपार्थक**– इसे 'असंबद्ध' भी कहते हैं। जिस कथन के अवयवों का तो अर्थ हो, पर उन सबके समुदाय का कोई अर्थ न निकलता हो, वहाँ अपार्थक दोष होता है। जैसे– शंख कदली में है और कदली भेरी में है।
4. **निरर्थक**– जिस कथन के अवयवों का ही कोई अर्थ न हो वहाँ निरर्थक दोष होता है। जैसे– डित्थ डवित्थ वाजिन।
5. **छल**– इस 'छल' नामक दोष को बड़ी सावधानी से समझना चाहिए। शास्त्रों में बारम्बार छल ग्रहण नहीं करने का उपदेश दिया गया है। यथा– **'चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं'**[5] अर्थात् यदि कहीं चूक हो जाए तो छल ग्रहण मत करना।

   वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ की कल्पना करके कथन में दोषारोपण करना छल है। यह तीन प्रकार का है– वाक्छल, सामान्य छल और उपचार छल।[6]

   (क) <u>वाक्छल</u>– जैसे– **"नवकम्बलोऽयं देवदत्तः।"** यहाँ वक्ता ने 'नव' शब्द का प्रयोग 'नवीन' के अर्थ में किया था, परन्तु कोई उसे 'नौ' संख्या के अर्थ में ग्रहण करे तो यह वाक्छल है।

   (ख) <u>सामान्य छल</u>– जैसे– **"अहो खल्वसौ ब्राह्मणो विद्याचरणसम्पन्नः।"** यहाँ वक्ता ने किसी विशेष ब्राह्मण को विद्याचरणसम्पन्न कहा था, परन्तु कोई उसे सभी ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ग्रहण करे तो यह सामान्य छल है।

   (ग) <u>उपचार छल</u>– जैसे– **"मंचाः क्रोशन्ति।"** यहाँ वक्ता ने उपचार से 'मंच रोते हैं' कहा था, परन्तु कोई ऐसा अर्थ ग्रहण करे कि मंच जैसे अचेतन पदार्थ कैसे रो सकते हैं, तो यह उपचार छल है।
6. **द्रुहिल**– जिस कथन में पुण्य-पापादि का अपलाप किया जाए वहाँ द्रुहिल दोष समझना चाहिये। जैसे– **"एतावानेव लोकोऽयं यावानिन्द्रियगोचरः।"** (**अर्थ**– यह लोक इतना ही है जितना कि इन्द्रियगोचर है।)
7. **निस्सार**– जिस कथन में कोई सार न हो, वहाँ निस्सार दोष जानना चाहिये। जैसे– **"अस्थिचर्मशिलापृष्ठं वृद्धाः।"** (**अर्थ**– अस्थि-चर्म का ढाँचा मात्र वृद्ध हैं।)
8. **अधिक**– जहाँ आवश्यकता से अधिक अवययों का प्रयोग किया जाए वहाँ 'अधिक' दोष होता है। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन –ये 5 अवयव हैं; परन्तु इनका प्रयोग यथायोग्य ही करना चाहिये। जहाँ प्रतिज्ञा और हेतु –इन दो से काम चल जाए वहाँ तीन का प्रयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा 'अधिक' दोष होगा।
9. **ऊन**– जहाँ आवश्यकता से कम अवयवों का प्रयोग किया जाए वहाँ 'ऊन' दोष होता है। जैसे– जहाँ मंदबुद्धि शिष्य के बोधार्थ पाँचों अवयवों का प्रयोग आवश्यक है वहाँ चार या तीन अवयवों का ही प्रयोग करना।
10. **पुनरुक्त**– पुनः-पुनः कहना ही पुनरुक्त है। वह तीन प्रकार का है–

    (क) <u>**अर्थपुनरुक्त**</u>– जैसे– इन्द्र, शक्र, पुरन्दर। यहाँ एक ही अर्थ को विभिन्न शब्दों से पुनः-पुनः कहा गया है, अतः यहाँ अर्थपुनरुक्त है।

(ख) **वचनपुनरुक्त**– जैसे– सैन्धवमानय, सैन्धवमानय। यहाँ एक ही बात को पुनः-पुनः कहा गया है, अतः वचनपुनरुक्त है।

(ग) **उभयपुनरुक्त**– जैसे– क्षीरं क्षीरम्। यहाँ अर्थ और शब्द दोनों को ही पुनः-पुनः कहा गया है, अतः यहाँ उभयपुनरुक्त है।

11. **व्याहत**– पूर्वकथन का उत्तरकथन से खण्डित हो जाना व्याहत दोष है। जैसे– "कर्म चास्ति फलं चास्ति भोक्ता नास्ति च निश्चयः।" (**अर्थ**– कर्म भी है और उसका फल भी है, परन्तु उसका कोई भोक्ता नहीं है।) यहाँ पूर्वकथन उत्तर कथन से बाधित (खण्डित) हो गया है अतः यहाँ 'व्याहत' दोष है।

12. **अयुक्त**– जो कथन युक्तिसंगत न हो अथवा जो कथन बुद्धि से विचार करने पर युक्ति को सहन न कर सके, उसमें अयुक्त दोष होता है। जैसे–

"तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिः।
प्रावर्तन नदी घोरा हस्त्यश्वरथिवाहिनी।।"

(**अर्थ**– उन मदोन्मत्त हाथियों के मदबिन्दुओं से ऐसी नदी बह निकली, जो हाथी, घोड़े और अनेक रथों को भी बहा दे।)

अथवा– अनुचित कथन करना अयुक्त दोष है। जैसे– यह शास्त्र आपके चरण-कमलों में भेंट करता हूँ।

13. **क्रमभिन्न**– जहाँ उचित क्रम का उल्लंघन हो जाए वहाँ 'क्रमभिन्न' दोष होता है। जैसे– "वर्द्धमान के माता-पिता का नाम सिद्धार्थ और त्रिशला है।" यहाँ माता-पिता के क्रमानुसार पहले त्रिशला और बाद में सिद्धार्थ कहना चाहिये था, अतः यहाँ क्रमभिन्न दोष है।

अथवा जैसे– "उसका हृदय समुद्र और पुष्प की भाँति कोमल और गम्भीर है।" यहाँ समुद्र का गुण गम्भीरता पहले कहना चाहिये था और पुष्प का गुण कोमलता बाद में; अतः यहाँ भी क्रमभिन्न दोष है।[7]

14. **वचनभिन्न**– उचित वचन का प्रयोग न करना वचनभिन्न दोष है। अर्थात् जहाँ एकवचन का प्रयोग करना चाहिये वहाँ द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग हो जाए अथवा जहाँ द्विवचन का प्रयोग करना चाहिये वहाँ एकवचन या बहुवचन का प्रयोग हो जाए, जहाँ बहुवचन का प्रयोग करना चाहिये वहाँ एकवचन या द्विवचन का प्रयोग हो जाए, वहाँ 'वचन भिन्न' दोष होता है।

15. **विभक्तिभिन्न**– उचित विभक्ति का प्रयोग न करना अथवा अन्यथा विभक्ति का प्रयोग करना ही विभक्तिभिन्न दोष है। जैसे– जहाँ तृतीया विभक्ति का प्रयोग करना चाहिये वहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोग कर देना विभक्तिभिन्न दोष है।

16. **लिंगभिन्न**– उचित लिंग का प्रयोग न करके अन्यथा लिंग का प्रयोग करना लिंगभिन्न दोष है। अर्थात् जहाँ स्त्रीलिंग का प्रयोग करना चाहिये वहाँ पुंल्लिंग या नपुंसकलिंग का प्रयोग कर देना, अथवा जहाँ पुंल्लिंग का प्रयोग करना चाहिये वहाँ स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग का प्रयोग कर देना, अथवा जहाँ नपुंसकलिंग का प्रयोग करना चाहिये वहाँ स्त्रीलिंग या पुंल्लिंग का प्रयोग कर देना 'लिंगभिन्न' दोष है।

17. **अनभिहित**– जो शास्त्र में नहीं कहा गया है उसे कहना अथवा अपनी इच्छा से कुछ भी कहना अनभिहित दोष है।

18. **अपद**– उपयुक्त पद का प्रयोग न करना अपद दोष है। जैसे– जहाँ गाथा पद का प्रयोग करना चाहिये वहाँ गीतिका पद का प्रयोग कर देना अपद दोष है।

19. **स्वभावहीन**– जहाँ किसी वस्तु को उसके आत्मीय स्वभाव से ही रहित बता दिया जाए वहाँ स्वभावहीन दोष होता है। जैसे– वायु स्थिर होती है।

20. **व्यवहित**– प्रकरणान्तर में चले जाना व्यवहित दोष है। जैसे– स्वर्ग-पटलों का वर्णन करते समय उसे बीच में ही छोड़कर नरकभूमि का वर्णन करने लग जाना।

21. **कालदोष**– भूत-भविष्य-वर्तमान कालों का अन्यथा प्रयोग कालदोष है। अर्थात् जहाँ भूतकाल का प्रयोग

करना चाहिये वहाँ भविष्य या वर्तमान काल का प्रयोग कर देना, अथवा– जहाँ भविष्य काल का प्रयोग करना चाहिये वहाँ भूत या वर्तमान काल का प्रयोग कर देना, अथवा– जहाँ वर्तमान काल का प्रयोग करना चाहिये वहाँ भूत या भविष्य का प्रयोग कर देना कालदोष है।

22. **यतिदोष**– यति का अर्थ होता है— विश्राम या विराम। यति (विराम) का अन्यथा प्रयोग यतिदोष है। श्लोक, गाथा या किसी अन्य छन्द में भी यति का एक निश्चित स्थान होता है, उसका उल्लंघन करना यतिदोष है।
23. **छविदोष**– छवि का अर्थ है– अलंकार। जहाँ अलंकारों का अनुचित प्रयोग हो वहाँ छविदोष होता है।
24. **समयविरुद्ध**– किसी दर्शन-विशेष के नाम पर उसके विरुद्ध बात कहना समयविरुद्ध दोष है। जैसे– वैशेषिक कहते हैं कि प्रधान कारण है, अथवा– जैन कहते हैं कि स्वर्ग-नरक और आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व नहीं है।
25. **वचनमात्र**– निराधार कुछ भी यद्वा-तद्वा बोलना वचनमात्र दोष है। जैसे– कोई पुरुष पृथ्वी में कहीं एक कील ठोककर कहे कि यह लोक का मध्य बिन्दु है।
26. **अर्थापत्ति**– जहाँ कहा गया एक कथन तो निर्दोष दिखाई देता हो, परन्तु उसी में से ध्वनित होने वाला अन्य अर्थ आपत्तिजनक हो वहाँ अर्थापत्ति दोष होता है। जैसे– **'ब्राह्मणो न हन्तव्यः'** अर्थात् ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिये। यहाँ 'ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिये' –यह कथन ऊपर से निर्दोष दिखाई देता है, परन्तु इसमें से यह अर्थ भी निकलता है कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को मारा जा सकता है जो आपत्तिजनक है, अतः यहाँ अर्थापत्ति दोष है।
27. **असमास**– जहाँ समास का योग प्राप्त होने पर भी समास-रहित पद कहे जाएँ वहाँ असमास दोष होता है। जैसे– 'नरेश जा रहा है' के स्थान पर 'नर का ईश जा रहा है' –ऐसा कहना असमास दोष है।
28. **उपमा**– जहाँ उपमा का अन्यथा प्रयोग हो वहाँ उपमा दोष होता है। जैसे–**"कांजिकमिव ब्राह्मणस्य सुरा पेया।"** अर्थात् कांजी के समान ब्राह्मण को सुरा पीनी चाहिये। यहाँ सुरा को कांजी की उपमा देकर पेय बताया गया है, अतः यहाँ उपमा दोष है।
29. **रूपक**– जहाँ रूपक का अन्यथा प्रयोग हो वहाँ रूपक दोष होता है। जैसे– **"पर्वतो रूप्यमान् आत्मीयैरङ्गैः शून्यो वर्ण्यते।"**
30. **परप्रवृत्ति**– जहाँ बहुत अर्थ बताकर भी वस्तु का निर्देश न किया जाए वहाँ परप्रवृत्ति दोष होता है।
31. **पद**– जहाँ तिङन्त या सुबन्त रूप पद का अन्यथा प्रयोग हो वहाँ पद दोष होता है। अथवा व्याकरण से असिद्ध पद का प्रयोग करना पद दोष है, जिसे ग्राम्यत्व भी कहते हैं।
32. **सन्धि**– जहाँ सन्धि का योग होते हुए भी सन्धि न की जाए अथवा अशुद्ध रूप से सन्धि की जाए वहाँ सन्धि-दोष होता है।

इसप्रकार ये सूत्र के 32 दोष हैं। कुशल सूत्रकार अपने सूत्रों की रचना इन सभी दोषों से बचाकर अत्यन्त निर्दोष रूप से करते हैं।

सम्पूर्ण जिनवाणी सूत्रात्मक कही गई हैं, अतः उसके कथन करनेवालों को तो अत्यधिक सावधानी रखनी चाहिए, अन्यथा घोर पाप का भागी बनना पड़ेगा। आजकल जिनवाणी के अनेक वक्ता दूषित कथन करते देखे जाते हैं। वे सावधान हों, शास्त्रानुकूल कथन ही करें— यही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

दूषित कथन करना धार्मिक एवं साहित्यिक अपराध ही नहीं है, सामाजिक अपराध भी है, क्योंकि दूषित कथनों से समाज में भी अनेक प्रकार के कलह उत्पन्न होते हैं। इसके अनेक उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। अतः हम सबको अपना एक-एक कथन बहुत सोच-समझकर उक्त 32 दोषों को टालकर बड़ी कुशलतापूर्वक आगमानुकूल ही करना चाहिए।